International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197; Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 797-799

समकालीन रचना दृष्टि : कौन हुँ मैं

डॉ0 संतोष कुमार सिंह
हिन्दी–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहांबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

मनोहर श्याम जोषी की औपन्यासिक कृतियों में 'कौन हूं मैं' श्रेष्ठतम है। यह उनका अंतिम उपन्यास भी है। 'कौन हूं मैं' का प्रकाषन जोषी जी के मरणोपरांत सन् 2006 ई. में वाणी प्रकाषन, नई दिल्ली से हुआ। 'कौन हूं मैं' न केवल आकार में लेखक का दीर्घतम उपन्यास है, बल्कि यह अपने विषय और शिल्प के चलते भी विशिष्ट है। कुल मिला कर यह जोषी जी की सातवीं औपन्यासिक रचना है। यह कृति लेखक के सुदीर्घ अनुसंधान तथा असीम धैर्य–संयम–परिश्रम का परिणाम है। हिन्दी उपन्यास की परंपरा में जहां कुछ हद तक यह ऐतिहासिक परंपरा से जुड़ता है वहीं अपनी रोचकता के चलते किसी रोमांचक फिल्म की पटकथा से कम नहीं लगता।

'कौन हूं मैं' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। यद्यपि यह उपन्यास पत्र, संस्मरण, डायरी आदि अन्य गद्य शैलियों की तरफ भी अतिक्रमण करता हुआ चलता है, किन्तु समग्रतः इसकी शैली आत्मकथात्मक ही है जिसमें पात्र प्रथम पुरुष में कथा–विवरण देते जाते हैं। सम्पूर्ण उपन्यास का विकास पात्रों के आत्मकथ्य के विकास में ही निहित है। कथा नायक 'मैं' अर्थात भवाल राजपरिवार के मझले राजकुमार रोमेन्द्र नारायण राय और उसके जीवन से निकटतः संबंधित दो स्त्रियों – पत्नी बिभावती देबी और मझली बहन ज्योतिर्मयी देबी – इन्हीं कुल तीन चरित्रों के आत्मकथ्य के माध्यम से यह पूरा उपन्यास रचा गया है। इन आत्मकथ्यों के युक्तियुक्त प्रस्तुतिकरण के लिए लेखक ने अलग–अलग परिच्छेदों का प्रयोग किया है। इस प्रकार यह उपन्यास 19 परिच्छेदों अथवा अध्यायों में विभाजित है। इनमें से सर्वाधिक 10 परिच्छेद पूरी तरह रोमेन्द्र के हिस्से आये हैं, 6 उसकी पत्नी विभा के, 2 बहन ज्योति के और एक परिच्छेद संयुक्त रूप से विभा और रोमेन्द्र दोनों के हिस्से आया है। इन तीनों पात्रों के आत्मकथ्यों का, परिच्छेदों के शीर्षकों के क्रम में प्रस्तुतिकरण का अध्ययन करने पर निम्नलिखित सिलसिला मिलता है :–

क्रमांक	परिच्छेद का शीर्षक	वह पात्र, जिसका आत्मकथ्य इस परिच्छेद में है
1.	1) प्राक्कथन 2) आमि कोथाय एलाम? 3) सद्वस्तु 4) ढाका डाक रहा है 5) श्रापबोध	रोमेन्द्र नारायण राय (मेजोकुमार)
2.	6) एक ठो अभिषप्त अबला	बिभावती देबी (मेजोकुमार की पत्नी)
3.	7) श्रापमुक्ति	ज्योतिर्मयी देबी (मेजोकुमार की मझली बहन)
4.	8) छेले मानुष 9) एलोकेषी	बिभावती देबी (मेजोकुमार की पत्नी)
5.	10) आत्म परिचय 11) भवसागर की भंवरों में	रोमेन्द्र नारायण राय (मेजोकुमार)
6.	12) जालसाजी का जाल	विभा
7.	13) आमाके चेन ? 14) राजा बहरुपिया	रोमेन्द्र
8.	15) एक पत्र अनभेजा	विभा
9.	16) भवाल संन्यासी	ज्योति
10.	17) पक्ष–प्रतिपक्ष	रोमेन्द्र
11.	18) गुहार	विभा
12.	19) जय–पराजय	रोमेन्द्र तथा विभा (दोनों बारी–बारी से)

'कौन हूं मैं' की कथा ब्रिटिषकालीन बंगाल के छोटे–से भूभाग पर शासन करने वाले भवाल राजपरिवार के मझले राजकुमार अर्थात् मेजोकुमार रोमेन्द्र नारायण राय के जीवन की विचित्र विडम्बना को रहस्य–रोमांच, संभव–असंभव, परिचय–अपरिचय, जीवन–मृत्यु, परतंत्रता–स्वतंत्रता, परंपरा–आधुनिकता और अंततः 'जय–पराजय' के द्वन्द्व के रूप में प्रस्तुत करती है। विषय पर लेखक की पकड़ इतनी गहरी और मजबूत है कि उसने कहानी के प्रत्येक पक्ष पर सम्यक् दृष्टिपात किया है। विषयानुकूल परिवेष रचते हुए लेखक ने कथा की स्थानीयता को पाठक के लिए कथा की सार्वभौमिकता में कतई आड़े नहीं आने दिया है। परिवेष की विष्वसनीयता और पात्रानुकूलता ऐसी कि अषिक्षित रोमेन्द्र से जुड़े सारे कथन ज्यादातर कम परिष्कृत हिन्दी या बांग्ला में और सुषिक्षिता विभा के कथन प्रायः साहित्य की भाषा में। इसी प्रकार उपन्यास से जुड़े शोध भी काफी उच्च स्तरीय हैं। इसकी सबसे अच्छी बानगी उपन्यास के सबसे बड़े अध्याय 'पक्ष–प्रतिपक्ष' में देखी जा सकती है। इसमें कानून के पेंचों से लेकर प्रषासन, अपराध, ज्योतिष और चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्रों तक से जुड़ी अनुसंधानपरक बातें शामिल हैं। मेजोकुमार की पहचान और संपत्ति के स्वामित्व बनाम उत्तराधिकार के मुकदमे की सुनवाई और उस दौरान वकीलों की जिरह के सिलसिले में ऐसे–ऐसे प्रसंग लेखक ने प्रस्तुत किए हैं कि पाठक चमत्कृत हुए बिना नहीं रह पाता। साथ ही कथा के प्रति पाठक का जुड़ाव,

जिज्ञासा और उत्सुकता के भाव भी तीव्रतर होते जाते हैं। रोचकता क्रमशः रोमांच में तब्दील होती जाती है। सपाट कथा–वर्णन के अभ्यस्त या शीघ्र परिणामोत्सुक पाठक उपन्यास के इस परिच्छेद को पढ़ते हुए धैर्य भी खो सकते हैं, किन्तु जैसी कि जोषी जी की विशेषता है, विडंबना का वर्णन सरल और सपाट तरीके से तो हो नहीं सकता। तो इसलिए ''यहां एक विराट विडम्बना से साक्षात्कार होता है, जो नायक को जिन्दगी के ऐसे मोड़ पर ला खड़ा करती है जहां उसे पूरी दुनिया मृत मान चुकी है और उसे अपने जीवित होने को सिद्ध करने के लिए अन्ततः न्यायालय की शरण लेनी पड़ती है। ब्रिटिषकालीन बंगाल में अवस्थित भवाल राजपरिवार के मेजोकुमार की अविष्वसनीय कथा, मृत्यु के बाद जिसका शव चिता से गायब हो गया और बरसों बाद जब एक साधु ने खुद के मेजोकुमार होने का दावा किया तब सम्पत्ति और सम्बन्धों के ताने–बाने में उलझी एक ऐसी गाथा का उद्घाटन हुआ जिसने पूरे देष को रोमांचित कर दिया।'' (इसी उपन्यास के ब्लर्ब से उद्धृत)

मनोहर श्याम जोषी ने अपनी एक अन्य पुस्तक 'पटकथा लेखन : एक परिचय' में किसी भी कहानी का दो मिनट में सुनायी जाने लायक होना आवष्यक बताया है। इसे उन्होंने 'टू मिनट स्टोरी' कहा है। इससे भी ज्यादा महत्व उन्होंने कहानी के 'आइडिया' को दिया है। उन्हीं के इन निकषों को विवेच्य उपन्यास 'कौन हूं मैं' पर लागू करके देखें तो इस उपन्यास की 'टू मिनट स्टोरी' इस प्रकार होगी :–

बंगाल की एक छोटी रियासत के विलासी राजकुमार रोमेन्द्र का विवाह गरीब मध्यवर्गीय संस्कारी विभावती के साथ होता है, किन्तु विभा स्वयं को उसके माफिक नहीं पाती और अक्सर बीमार रहती है। विभा की कुषल–क्षेम के लिए उसका प्रगतिषील विचारों का युवा भाई सत्या उसके ससुराल में आता है और भवाल राजपरिवार का अपरिहार्य अंग बन जाता है। अत्यधिक भोग–विलास के कारण यौन रोग 'सिफलिस' से पीड़ित रोमेन्द्र के इलाज के लिए वह उसे दार्जिलिंग ले जाता है, जहां संदिग्ध परिस्थितियों में रोमेन्द्र की मृत्यु हो जाती है। किन्तु अंत्येष्टि से पूर्व ही रोमेन्द्र को कुछ नागा साधुओं द्वारा जीवित बचा लिया जाता है। इस घटना के दौरान रोमेन्द्र की स्मृति जा चुकी होती है। धीरे–धीरे, दस–बारह वर्षों बाद क्रमषः उसकी स्मृति वापस आने लगती है और अंततः वह अपने घर भी पहुंच जाता है। इस बीच उसकी विरासत पर उसकी पत्नी विभा के माध्यम से (और अंग्रेजों की मदद लेकर कपटपूर्वक) उसका साला सत्या अधिकार कर लेता है। रोमेन्द्र के वापस लौटने पर तमाम भावुक घटनाक्रम के बीच उसकी मां, बहन इत्यादि तो उसे पहचान तथा स्वीकार लेती हैं किंतु साला सत्या तथा पत्नी विभा ऐसा नहीं करते। (क्योंकि उनके लिए ऐसा स्वीकार करना मेजोकुमार की हत्या का अपराध कुबूलने जैसा है) अपनी पहचान सिद्ध करने के अनेक प्रयास करने के बाद अंततः रोमेन्द्र को अदालत का दरवाजा खटखटाना पड़ता है और इस तरह अपनी ही पत्नी के विरुद्ध मुकदमा दायर करना पड़ता है। लम्बी कानूनी लड़ाई के बाद निर्णय रोमेन्द्र के पक्ष में आता है। निर्णय से हताष सत्या की मृत्यु हो जाती है। अंततः रोमेन्द्र को भी लकवा मार जाता है जिससे अब उसकी वास्तविक (और प्राकृतिक) मृत्यु हो जाती है। लेकिन विडम्बना यह है कि उसकी पत्नी विभा इस साधु रोमेन्द्र को हमेषा कपटी साधु ही मानती रहती है और अपने वैधव्य में ही सुख पाती है।

इस उपन्यास का यदि अलग से समाजषास्त्रीय अध्ययन किया जाए तो लेखक के श्रम का किंचिद् बेहतर मूल्यांकन हो सकता है। तथापि, मोटे तौर पर ही देखें तो यह उपन्यास पुरुष और स्त्री के दो अलग–अलग रूपों को सामने रखता है। इन दोनों रूपों के निरंतर द्वंद्व से पुरुष के रूप में रोमेन्द्र, तथा स्त्री के रूप में विभा के पात्र का चरित्रगत विकास हुआ है। इसमें एक तरफ ब्रह्मचारी नागा साधु सुंदरदास के रूप में आया रोमेन्द्र है तो दूसरी तरफ विलासी और अक्खड़ मेजोकुमार के रूप में आया व्यभिचारी सामंत रोमेन्द्र नारायण राय। इसी प्रकार एक तरफ उन्नीसवीं–बीसवीं सदी के बंगाल की संस्कारवती (डरी सहमी बालिकावधू) हिन्दू नारी विभा है तो दूसरी तरफ अपने हिस्से की संपत्ति को भोगती आत्मनिर्भर आधुनिका मेजोरानी के रूप में विधवा बिभावती देवी।

स्त्री–जीवन की विडम्बनाओं को रेखांकित करते हुए लेखक ने कुछ बेहद महत्वपूर्ण समाजषास्त्रीय प्रष्न उठाए हैं। इनमें सर्वप्रमुख हैं परिवार की संस्था से जुड़े प्रष्न। संयुक्त परिवार की व्यवस्था आधुनिक समय में हमेषा ही विवाद का विषय रही है। उपन्यास की मुख्य स्त्री पात्र विभा के माध्यम से लेखक ने इस विवाद को पुनः चर्चा के केन्द्र में लाने का प्रयास किया है। अपने 'छेले मानुष' पति के साथ आपसी समझ और अंतरंगता स्थापित कर पाने में विफल विभा का यह आत्मकथ्य संयुक्त परिवार की परंपरा के प्राप्यों का निचोड़ जान पड़ता है – ''मैं अलमारी में रखे गुड्डे को देखती रही और क्रुद्ध होती रही, संयुक्त परिवार की उस व्यवस्था पर जिसमें किसी का भी अंतरंग जीवन गोपनीय नहीं रह पाता और जिसमें दूसरे आपके जीवन में कभी बताकर और बहुधा बिना बताए हस्तक्षेप करते हैं। और कदाषयपूर्ण ही नहीं, दूसरों के जीवन में किए गए सदाषयपूर्ण हस्तक्षेप भी नितान्त अहितकारी सिद्ध होते हैं।''[1]

मनोहर श्याम जोषी न केवल पत्रकारिता के माध्यम से समाज से जुड़े थे बल्कि वामपंथ के जरिए भी वे समाज और उसकी समस्याओं–विसंगतियों तक पहुंच सके थे। उनके ये अनुभव अक्सर ही उनके लेखन में दिखाई देते हैं। वामपंथ और प्रगतिषील चिंतन के आड़े आने वाले सुविधाप्रेमी लम्पट मध्यवर्ग की जैसी खूब पहचान इस उपन्यास में जोषी जी ने 'सत्या बाबू' के रूप में कराई है, वह उनके एतद्विषयक अनुभवों और वामपंथ से जुड़े अध्ययनों का प्रतिफल प्रतीत होता है। सत्या बाबू जैसे चतुर चोरों को समाज में 'कुटिल' कहा जाता है, लेकिन उनसे अनभिज्ञ लोगों के लिए वे अक्सर अपने ज्ञान और बुद्धिमत्ता के चलते या तो श्रद्धा के पात्र होते हैं या फिर जो उनकी कथनी–करनी का लेखा–जोखा कर ले उसके लिए हास्य के। 'भव सागर की भंवरों में' आ गए साधु रोमेन्द्र के माध्यम से लेखक ने सैद्धान्तिक वामपंथ बनाम व्यावहारिक वामपंथ की जोरदार बहस खड़ी की है। रोमेन्द्र बताता है – ''षीतल जल में स्नान करते हुए मैं सोचने लगा साला बाबू के बारे में। राजपरिवार के सभी लोग उन्हें कुटिल बताते थे किन्तु मुझे तो वे कुटिल नहीं श्रद्धास्पद और हास्यास्पद दोनों लगते रहे। श्रद्धास्पद इसलिए कि वह हम लोगों से अधिक पढ़े–लिखे और सुविज्ञ थे हास्यास्पद इसलिए कि वह हम जमींदारों को परिश्रमी प्रजा का रक्त चूसने वाले परजीवी बताया करते किन्तु स्वयं उन्हें जयदेबपुर की राजबाड़ी में रहना बहुत सुहाता। वह मोटी–मोटी पोथियां बांचते रहते और हमें बताते कि जिन असहाय निर्धनों का हम शोषण कर रहे हैं वे एक दिन विद्रोह कर उठेंगे, हिंसक क्रांति होगी और प्रजा फांसी पर चढ़ा देगी उन्हें जो राजा होना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते रहे हैं। कहते थे कि फ्रान्स में ऐसा ही हुआ था। मैं नहीं जानता था कि फ्रान्स कहां है? और न मुझे ऐसा जानने में कोई रुचि ही थी किन्तु वह द्वारिका मास्टर के ग्लोब पर मुझे फ्रान्स दिखा कर ही माने। मैं तो मात्र इतना जानना चाहता था कि यदि साला बाबू कर्मठता और ज्ञान–साधना के इतने ही बड़े पुजारी हैं तो अपनी पढ़ाई–लिखाई शीघ्रातिषीघ्र पूर्ण करके कोई नौकरी या व्यवसाय क्यों नहीं कर लेते है?''[1] यही दोहरापन वामपंथ के रास्ते का सबसे बड़ा रोड़ा बनकर उसकी कथनी और करनी में फर्क पैदा करता है, और अंततः इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है क्रांतिकारी वामपंथ की ईमानदार परम्परा को।

इस सुविधाप्रेमी मध्यवर्ग के समझौते भी बड़े स्वार्थपूर्ण होते हैं। इसकी बानगी विभा के भाई सत्येन्द्रनाथ बनर्जी के आचरण तथा कथन में देखी जा सकती है। अपनी ही बहन को अपने आदर्षों के विरुद्ध आचरण के लिए प्रेरित करते हुए सत्या बाबू कहते हैं – ''मैंने जमाई बाबू की रखैल एलोकेषी की कथा सुन ली है बिभा और मैं उसके बारे में बात करके तेरा दिल दुखाऊंगा नहीं।

किन्तु हां पिछले दिनों अपने अंग्रेजी अध्यापक के मुंह से मैंने जो प्रार्थना सुनी वह तुझे अवष्य सुनाऊंगा। वह है – ओ लॉर्ड गिव मी द करेज टू चेंज द थिंग्स आइ कैन, द सिरेनिटि टू एक्सेप्ट दोज आइ कान्ट नॉट, एण्ड द विजडम टू नो द डिफरेंस। अर्थात् हे प्रभु, जो बदला जा सके उसे बदल डालने का साहस दे, जो न बदला जा सके उसे स्वीकार करने का निर्वेद दे और बुद्धिमत्ता दे इन दोनों में अन्तर कर सकने की। इस प्रार्थना से ही तेरा जीवन संवर सकता है।''[1] कहने की आवष्यकता नहीं कि सत्या की इस सीख के पीछे बहन के हित की चिन्ता से ज्यादा अपनी सुविधा, स्वार्थ और भावी जीवन की कूटनीतिक योजना की चिन्ता निहित है। अपनी समस्त वैचारिकता और प्रगतिषीलता को वह अपने निर्णयों को 'जस्टीफाई' करने और अपने संबंधियों के भावनात्मक शोषण के लिए इस्तेमाल करता है। यथास्थिति को ही अपनी जीत घोषित करने के 'दम्भ' को विभा पहचान तो लेती है किन्तु उसका प्रतिरोध नहीं कर पाती। अवरोध बनता है संबंधों का भावनात्मक आधार। यहीं मुक्तिबोध के 'संवेदनात्मक ज्ञान' बनाम 'ज्ञानात्मक संवेदन' की बहस की सार्थकता हमें स्पष्ट दिखने लगती है। सत्या द्वारा स्वयं को यथास्थिति स्वीकारने को प्रेरित करने पर विभा के तर्क विशेषतः उल्लेखनीय हैं – ''दादा बोले कि सामन्ती परिवार की बोऊरानी बन जाने की अपनी स्थिति स्वीकार कर विभा। सामन्तों की रीति–नीति अंगीकार कर नहीं तो ऐसे ही स्वयं दुख पाएगी और अपने पति को और हम सबको दुखी करेगी। सामन्त बहुधा अपनी रातें नाचने–गाने वालियों के साथ बिताते हैं यह मान लेने में ही तेरा उद्धार है बिभा। तू तो इसी से सन्तोष कर कि कोई और पत्नी नहीं ले आये हैं या अपनी रखैल को तेरी ही आंखों के सामने नहीं भोग रहे हैं। जिस तरह के तर्क रोज मुझे दिया करती थीं ठाकुर मां वही अपने आधुनिक दादा के मुंह से सुनकर मैं तिलमिला उठी।

क्रोध से कांपते हुए मैं बोली कि एक आधुनिक युवक होते हुए भी मेरी सामन्ती ससुराल की वृद्धाओं की बोली कबसे बोलने लगे दादा? मैं उनसे पूछते हुए तो संकोच कर जाती हूं किन्त तुमसे तो पूछ सकती हूं कि किस धर्मषास्त्र में लिखा है कि वेष्यागमन पवित्र कर्तव्य है हर सामन्त का? वे भले ही मानती हों, आप कैसे मानते हैं कि मुझे इसी से परम प्रसन्न रहना चाहिए कि मेरे पति अपनी उपपत्नी को मेरी आंखों के सामने नहीं भोगते।''[1] यहां बिभावती देबी के इन तर्कों के माध्यम से लेखक ने बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में भारत में षिक्षा और आधुनिक चेतना के आगमन को रेखांकित किया है, साथ ही स्त्री के वैचारिक उत्थान और सतर्क वैचारिकता का भी संकेत देने का प्रयास किया है।

विभा अपने भाई सत्या के सतत् पतन को सजग प्रेक्षक की तरह देखती है –''उधर, दादा जब भी मिलते उनके पास जमाई बाबू की विलासिता और अपव्यय की कोई नयी कथा होती। इस बीच मां को भी पता चल गया कि दादा जमाई बाबू की निगरानी के नाम पर थिएटर और वेष्यालय जाते हैं। उसने कहना और लिखना शुरू किया कि तू न अपनी देखरेख कर पाती है और न अपने पति की। इन कामों में तूने अल्लापद को झोंक दिया है। तुझे यह भी चिन्ता नहीं कि तेरा सामन्ती पति तेरे मध्यमवर्गीय दादा को विलासिता का चस्का लगा देगा ? इस बार मुझे भी कभी–कभी ऐसा प्रतीत होने लगा कि जमाई बाबू की विलासिता का वर्णन करते हुए दादा के स्वर में भर्त्सना से अधिक ईर्ष्या का भाव झलकता है।''[1]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कौन हूं मैं, मनोहर श्याम जोषी, पृष्ठ 119, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007।
2. वही, पृष्ठ 230।
3. वही, पृष्ठ 159।
4. वही, पृष्ठ 160।
5. वही, पृष्ठ 192।